भर्तृहरि एवं भगवान् शिव

लगभग दो हजार वर्ष पूर्व उज्जयिनी, जो आज उज्जैन के नाम से जानी जाती है तथा आर्यावर्त की राजधानी थी, में भर्तृहरि राज्य करते थे। मालव प्रान्त के शासक महाराजा भर्तृहरि परमार वंश के थे और विक्रमादित्य के अग्रज भी। प्रजावत्सल भर्तृहरि महान् विद्वान्, श्रेष्ठ कवि व काव्यप्रेमी, संस्कृत के उद्भट विद्वान्, व्याकरण के अद्भुत ज्ञाता, स्फोट सिद्धान्त के प्रतिपादक, दार्शनिक, तत्त्वज्ञ, प्रकृतिप्रेमी तथा नीतिज्ञ थे। उनकी न्याय-प्रियता व प्रजा-वत्सलता की चर्चा सर्वत्र होती रहती थी। न्याय, नीति व धर्म पर आचरण करनेवालों के लिये महाराजा जितने दयालु थे उतने ही अधिक दुष्ट, अन्यायी व धर्मद्वेषी के लिये कठोर भी थे। उनके अनुज कालांतर में प्रतापी राजाधिराज विक्रमादित्य नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं के नाम पर विक्रमी संवत् चला। भर्तृहरि की अनेक रचनायें हैं। व्याकरण-संबंधी ग्रन्थ के अलावा उनका 'शतक त्रय' बहुत की प्रसिद्ध है। प्रस्तुत लेख का आधार उनका 'वैराग्य शतक' है।

एक समय किसी महर्षि ने दर्शनार्थ आये हुए महाराज भर्तृहरि को प्रसन्न होकर आयु बढ़ानेवाला एक फल दिया। महाराज ने उस फल को न खाकर प्राणों से भी अधिक प्रिय अपनी रानी(पिंगला) को दे दिया। रानी ने भी उसे किले की रखवाली करनेवाले अपने(अवैध) प्रेमी को दिया, उस प्रेमी ने फल के महत्त्व को समझकर उसे अपनी प्रिया किसी वेश्या को दे दिया; वेश्या ने भी उस फल के महत्त्व को जानकर स्वयं नहीं खाया और यह समझकर कि यदि यह फल राजा को दिया जाय तो वह चिरकालतक जीवित रहकर प्रजा का पालन-पोषण कर सकेगा। इस सद्भावना से उसने वह फल महाराजा भर्तृहरि को दे दिया। तदनन्तर भर्तृहरि अपनी पत्नी को व्यभिचारिणी जानकर यों कहने लगे-

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च।। (नीतिशतकम् श्लोक 2)

भावार्थ यह है कि-निरन्तर जिसकी मैं चिन्ता किया करता हूँ, वह मुझसे विरक्त रहकर अन्य पुरुष की इच्छा करती है, वह अन्य पुरुष भी किसी दूसरी स्त्री पर आसक्त रहता है और हमारे लिये कोई अन्य ही स्त्री प्राण दे रही है, इसलिये अन्य पुरुष से प्रीति रखनेवाली अपनी स्त्री को धिक्कार है, उस पुरुष को धिक्कार है जिसे वह चाहती है, इस अन्य स्त्री को धिक्कार है जो मुझको चाहती है, मुझको भी धिक्कार है और उस कामदेव को भी धिक्कार है।

उपर्युक्त घटना से भर्तृहरि संसार से विरक्त हो योगसाधना में लीन हो गये। भगवान् शिव को प्रसन्न कर कैवल्य को प्राप्त किया। इतिहास में उन्हें एक महान् योगी, वैयाकरण तथा साहित्यकार के

रूप में जाना जाता है।

भर्तृहरि के अनुसार भगवान् शिव परम दयालु होने के कारण कल्याणकारी हैं, वे भक्तों के अन्त:करण से मोह का नाश करनेवाले, ज्ञान प्रदान करनेवाले, योगियों के ध्येय, शान्ति प्रदान करनेवाले एवं भव-बंधन से छुड़ानेवाले हैं। शिव में अचल भक्ति के प्राप्त हो जाने पर अन्य किसी ऐश्वर्य की आवश्कता नहीं रह जाती। सबसे बड़े वैराग्य की पहचान शिवभक्ति का होना है। भवरूपी जाल से तथा त्रिगुण की रस्सी के बंधन से छुड़ानेवाले भगवान् शिव ही हैं। अत: शिवजी का ध्यान करना चाहिये। मनुष्य के लिये भगवान् शिव के चरणों के सिवा दूसरी कोई गति नहीं है।

भर्तृहरि एक स्थल पर कहते हैं कि यद्यपि भगवान् विष्णु एवं शिव में कोई भेद नहीं है तथापि चन्द्रशेखर शिव में ही मेरी प्रीति है।

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि।
तयोर्न भेद प्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे।। (वैराग्यशतकम् 84)

भर्तृहरि की भगवान् शिवसंबंधी धारणा का परिचय हमें उनके वैराग्य शतक के कुछ श्लोकों से होता है। उन श्लोकों में वे उनसे संबंधित अपने विचारों को काव्यमय ढंग से प्रस्तुत करते हैं। हम उनमें से कुछ श्लोकों की चर्चा यहाँ करेंगे।

चूडोत्तंसित चारु चन्द्रकलिका चञ्चच्छिखा भास्वरो
लीलादग्धविलोलकामशलभः श्रेयोद्वशाग्रे स्फुरन्।
अन्तःस्फूर्जदपारमोहतिमिरप्राग्भारमुच्चाटयं
-श्चेतः सद्मनि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः।। (वैराग्यशतकम 1)

अर्थात्- शिरोभूषणीभूत चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशमान, कामदेवरूप पतंगों को लीला से ही जलानेवाले, कल्याणकारियों में अग्रगण्य, भक्तों के अंत:करण में स्थित मोहरूपी अंधकार का नाश करनेवाले, ज्ञान के प्रकाश को बिखेरनेवाले भगवान् शंकर योगियों के हृदय में रहा करते हैं।

उपर्युक्त श्लोक का निहित अर्थ यह है कि भगवान् शिव परम कल्याणकारी, भक्तों के मोह को दूर करनेवाले, आत्मज्ञान को प्रदान करनेवाले तथा योगियों के ध्येय हैं।

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरिद्
गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः।
सुहृदा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यं व्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता।। (वैराग्यशतकम् 40)

भावार्थ यह है कि महादेव ही मेरे एकमात्र आराध्य देव हैं, गंगा ही एकमात्र नदी है, पर्वत की कन्दरायें ही घर हैं, काल ही मित्र है, दिशायें ही वस्त्र हैं और अदैन्य ही व्रत है। मैं और अधिक क्या कहूँ, वटवृक्ष ही मेरे लिये दयितास्वरूप(अत्यन्त प्रिय वस्तु) है।

उपर्युक्त श्लोक का तात्पर्य यह है कि विरक्त पुरुष की जीवनयात्रा के लिये ये ही पदार्थ पर्याप्त हैं।

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः।। (वैराग्यशतकम् 59)

भाव है–हे शम्भो! मैं कब अकेला, कामनारहित, शान्त, करपात्री, दिगम्बर और भवबन्धन का निर्मूलन करनेवाला होऊँगा।

उपर्युक्त श्लोक का निहितार्थ यह है कि भगवान् शिव ही भवबन्धन को निर्मूल करनेवाले तथा कामनाहीन कर वैराग्य प्रदान करनेवाले हैं। अतः उनसे यह प्रार्थना की जा रही है कि वे कामनाहीन कर भवबन्धन को निर्मूल करने की शक्ति प्रदान करें।

भिक्षा कामदुघा धेनुः कन्था शीतनिवारणी।
अचला तु शिवे भक्तिर्विभवैः किं प्रयोजनम्।। (वैराग्यशतकम् 97)

जब भिक्षा ही कामधेनु है, कथरी ही जाड़ा मिटानेवाली है, शिव में ही अचल भक्ति है तो फिर ऐश्वर्य की आवश्कता ही क्या है।

इस श्लोक में छुपा भाव यह है कि शिवभक्ति की प्रचण्ड–जागृति होने पर भिक्षा एवं कथरी के अलावा भक्त को कुछ नहीं चाहिये क्योंकि शिवभक्ति से मूल्यवान कोई भी वस्तु नहीं है। अर्थात् शिव–भक्ति की प्राप्ति ही जीवन का परम पुरुषार्थ है।

कदा संसारजालान्तर्बद्धं त्रिगुणरज्जुभिः।
आत्मानं मोचयिष्यामि शिवभक्तिशलाकया।। (वैराग्यशतकम् 98)

भवजाल के भीतर त्रिगुणमयी रज्जु से बँधी आत्मा को शिवभक्तिरूप शलाका से मैं कब छुड़ा सकूँगा।

यहाँ तात्पर्य यह है कि भगवान् शिव की भक्ति में भवजाल, जो तीन गुणों वाला है, को काटने की सामर्थ्य है। इस कारण से भर्तृहरि शिव से याचना करते हैं कि शीघ्र ही इस भवजाल से उन्हें छूटने की भक्तिरूपी शक्ति प्रदान करें।

अन्त में सारांश के तौर पर यह कहा जा सकता है कि भगवान् शिव की भक्ति भवबंधन को छुड़ानेवाली, कामादि विकारों को दूर करनेवाली तथा वैराग्य प्रदान करनेवाली है। भगवान् शिव एवं विष्णु यद्यपि एक दूसरे के समान ही हैं तथापि भर्तृहरि भगवान् शिव को ही अपना इष्ट स्वीकार करते हैं तथा अन्य लोगों को भी उनकी भक्ति की सलाह देते हैं।

('भतृहरी शतक(त्रय)' के अनेकों संस्करण मिलते हैं जिनके पाठों में काफी अन्तर हैं। कुछ संस्करणों के श्लोक दूसरे संस्करणों में नहीं मिलते जबकि कुछ श्लोकों की(विषय वस्तु समान होते हुए भी उनकी) शब्दावली में अन्तर है। उपर्युक्त लेख डायमंड पाकेट बुक्स, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित तथा पं. राधाकृष्ण श्रीमाली द्वारा संपादित 'भतृहरी शतक' पर आधारित है।)

❁❁❁❁❁❁